महान् प्रतापी श्रीमोहनलालजी महाराज

[भँवरलाल नाहटा]

पंचमकाल में जिनेश्वर भगवान के अभाव में जिनशासन को अक्षुण्ण रखने में जिनप्रतिमा और जैनागम दोनों प्रबल कारण हैं जिसकी रक्षा का श्रेय श्रमण परम्परा को है। उन्होंने ही अपने उपदेशों द्वारा श्रावक-गृहस्थ वर्ग को धर्म में स्थिर रखा और फलस्वरूप सातों क्षेत्र समुन्नत होते रहे। सुदूर बंगाल जैसे हिंसाप्रधान देश में तो यतिजनों ने विचर कर जैन धर्मी लोगों को धर्म-मार्ग में स्थिर रखा है। समय-समय पर आये हुए शैथिल्य को परित्याग कर शुद्ध साध्वाचार को प्रतिष्ठा बढाने वाले वर्तमान साधु-समुदाय के तीनों महापुरुषों ने क्रियोद्धार किया था। श्रीमद् देवचन्द्रजी, जिनहर्षजी आदि अनेक सुविहित साधुओं की परम्परा अब नहीं रही है पर क्षमाकल्याणजी महाराज जिनका साधु-साध्वी समुदाय खरतर गच्छ में सर्वाधिक है, के पश्चात् महान्-प्रतापी तपोमूर्त्ति श्रीमोहनलालजी महाराज का पुनीत नाम आता है। आपने पहले यति दीक्षा लेकर लखनऊ में काफी वर्ष रहे फिर कलकत्ता-बंगाल में विचरणकर यहीं से वैराग्य में अभिवृद्धि होने पर तीर्थयात्रा करते हुए अजमेर जाकर फिर त्याग-मार्ग की ओर अग्रसर हुए थे, उनका संक्षिप्त परिचय यहां दिया जाता है।

महान् शासन-प्रभावक श्रीमोहनलालजी महाराज अठारहवीं शताब्दी के आचार्यप्रवर श्रीजिनसुखसूरिजी के विद्वान् शिष्य यति कर्मचन्द्रजी-ईश्वरदासजी-वृद्धिचन्द्रजी-लालचन्दजी के क्रमागत यति श्रीरूपचन्दजी के शिष्यरत्न थे। आपका जन्म सं० १८८७ वैशाख सुदि ६ को मथुरा के निकटवर्ती चन्द्रपुर ग्राम में सनाढ्य ब्राह्मण बादरमलजी की सुशीला धर्मपत्नी सुन्दरबाई की कुक्षि से हुआ था। आपका नाम मोहनलाल रखा गया, जब आप सात वर्ष के हुए माता-पिता ने नागौर आकर सं० १८९४ में यति श्रीरूपचन्द्रजी को शिष्य रूपमें समर्पण कर दिया। यतिजी ने आपको योग्य समझकर विद्याभ्यास कराना प्रारम्भ किया। अल्प समय में हुई प्रगति से गुरुजी आप पर बड़े प्रसन्न रहने लगे। उस समय श्रीपूज्याचार्य श्रीजिनमहेन्द्रसूरिजी बड़े प्रभावशाली थे और उन्हीं के आज्ञानुवर्त्ती यति श्रीरूपचन्द्रजी थे। दीक्षानंदी सूची के अनुसार आप की दीक्षा सं० १९०० में नागोर में होना सम्भव है। मोहन का नाम मानोदय और लक्ष्मीमेरु मुनि के पौत्र-शिष्य लिखा है। जीवनचरित के अनुसार आपकी दीक्षा मालव देश के मकसीजी तीर्थ में श्री जिनमहेन्द्रसूरिजी के कर कमलों से हुई थी। इन्हीं जिनमहेन्द्रसूरि जी महाराज ने तीर्थाधिराज शत्रुञ्जय पर बम्बई के नगरसेठ नाहटा गोत्रीय श्री मोतीशाह की टूँक में मूलनायकादि अनेकों जिनप्रतिमाओं की अंजनशलाका प्रतिष्ठा बड़े भारी ठाठ से कराई थी।

श्रीमोहनलालजी महाराज ने ३० वर्ष तक यतिपर्याय में रहकर सं० १९३० में कलकत्ता से अजमेर पधारकर क्रियोद्धार करके संवेगपक्ष धारण किया। आपका साध्वाचार बड़ा कठिन और ध्यान योग में रत रहते थे एकबार अकेले विचरते हुए चल रहे थे नगर में न पहुंच सके तो वृक्ष के नीचे ही कायोत्सर्ग में स्थित रहे, आपके ध्यान प्रभाव से निकट आया हुआ सिंह भी शान्त हो गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तपश्चर्यारत संयमी जीवन में आपको रात्रि में पानी तक रखने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। पीछे जब साधु समुदाय बढ़ा तब रखने लगे। एकबार आप प्राचीन तीर्थ श्रीओसियां पधारे तो वहां का मन्दिर-गर्भगृह और प्रभु प्रतिमा तक बालु में ढंके हुए थे। आपने जबतक जीर्णोद्धार कार्य न हो विगय का त्याग कर दिया। पीछे नगरसेठ को मालूम पड़ा और जीर्णोद्धार करवाया गया। ओसियां के मन्दिर में आपश्री की मूर्त्ति विराजमान है।

आपने मारवाड़, गुजरात, काठियावाड़ आदि अनेक ग्राम नगरों में अप्रतिबद्ध विहार किया था। बम्बई जैसी महानगरी में जैन साधुओं का विचरण सर्वप्रथम आपने ही प्रारंभ किया। वहाँ आपका बड़ा प्रभाव हुआ, वचन-सिद्ध प्रतापी महापुरुष तो थे ही, बम्बई में घर घरमें आपके चित्र देखे जाते हैं। आपने अनेकों भव्यात्माओं को देशविरति-सर्वविरति धर्म में दीक्षित किया। आपका विशाल साधु समुदाय हुआ। अनेक स्थानों में जीर्णोद्धार-प्रतिष्ठाएँ आदि आपके उपदेशों से हुई। सं० १९४१ में महातीर्थ शत्रुञ्जय की तलहट्टी में मुर्शिदाबाद निवासी रायबहादुर बाबू धनपतसिंहजी दुगड़ द्वारा निर्मापित विशाल जिनालय की प्रतिष्ठा-अंजनशलाका आपही के कर-कमलों से सम्पन्न हुई थी।

आपका शिष्य परिवार विशाल था, आपमें सर्वगच्छ समभाव का आदर्श गुण था अतः आपका शिष्य समुदाय आज भी खरतर और तपगच्छ दोनों में सुशोभित है। आपके व आपके शिष्यों द्वारा अनेक मन्दिरों, दादावाड़ियों के निर्माण, जीर्णोद्धारादि हुए, ज्ञानभंडार आदि संस्थाएं स्थापित हुई, साहित्योद्धार हुआ। आप अपने समय के एक तेजस्वी युगपुरुष थे। निर्मल तप-संयम से आत्मा को भावित कर अनेक प्रकार से शासन-प्रभावना करके सं० १९६४ वैशाख कृष्ण १४ को सूरत नगर में आप समाधि पूर्वक स्वर्ग सिधारे।

आचार्य-प्रवर श्रीजिनयशःसूरिजी

[भँवरलाल नाहटा]

खरतर गच्छ विभूषण, वचनसिद्ध योगीश्वर श्री मोहन-लालजी महाराज के पट्ट-शिष्य श्री यशोमुनिजी का जन्म सं० १९१२ में जोधपुर के पूनमचंदजी सांड की धर्मपत्नी मांगोबाई की कुक्षि से हुआ। इनका नाम जेठमल था, पिताश्री का देहान्त हो जाने पर अपने पैरों पर खड़े होने और धार्मिक अभ्यास करने के लिये माता की आज्ञा लेकर किसी गाड़ेवाले के साथ अहमदाबाद की ओर चल पड़े। इनके पास थोड़ा सा भाता और राह खर्च के लिये मात्र दो रुपये थे। इनके पास पार्श्वनाथ भगवान के नाम का संबल था अतः भूख प्यास का ख्याल किये बिना आवरत यात्रा करते हुए अहमदाबाद जा पहुँचे। किसी सेठ की दुकान में जाकर मधुर व्यवहार से उसे प्रसन्न कर नौकरी कर ली और निष्ठापूर्वक काम करने लगे। मुनि महाराजों के पास धार्मिक अभ्यास चालू किया एवं व्याख्यान-श्रवण व पर्वतिथि को तपश्या करने लगे। एकबार कच्छ के परासवा गांव गए; जहां जीतविजयजी महाराज का समागम हुआ। आपकी धार्मिकवृत्ति और अभ्यास देखकर धर्माध्यापक रूप में नियुक्ति हो गई। धार्मिक शिक्षा देते हुए भी आपने ४५ उपवास की दीर्घतपश्चर्या की। स्वधर्मी-बन्धुओं के साथ समेतसिखरजी आदि पंचतीर्थी की यात्रा की।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org